अध्याय प्रथम

छत्तीसगढ़ की संस्कृति

1. संस्कृतिक का परिचय
2. संस्कृति का अर्थ एवं परिभाषा
3. सांस्कृतिक संरचना
4. छत्तीसगढ़ की संस्कृति के परिपेक्ष्य में
5. छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति
6. छत्तीसगढ़ का लोक साहित्य
7. कवि समाज की स्थापना
8. छत्तीसगढ़ की लोक भाषाएँ
9. छत्तीसगढ़ की लोक बोली
10. छत्तीसगढ़ शब्द कोष एवं विस्तार

छत्तीसगढ़ी लोक गीत

1. करमा गीत
2. सुवा गीत
3. ददरिया
4. पन्डवानी गीत
5. बांस गीत

छत्तीसगढ़ी लोक कलाएँ

आदिवासी लोककला

छत्तीसगढ़ी लोक नृत्य

1. सुवा नृत्व
2. करमा नृत्य
3. अहिर नाचा या रावत नाचा
4. डंडा नृत्य
5. रहस नृत्य

अध्याय प्रथम
छत्तीसगढ़ की संस्कृति

संस्कृतिक की भूमिका

"सम" उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से भूषण अर्थ से सुर का आगम और 'ति' तीन प्रत्ययों से जुड़कर 'संस्कृति' शब्द बनता है। इसका अर्थ होता है, भूषणयुक्त सम्यक वृत्ति। जिन चेष्टाओं के द्वारा मनुष्य से ही उसके लिये भूषणयुक्त सम्यक क्षेत्रों में उन्नति करता हुआ, सुख–शांति प्राप्त करे, वे चेष्टा से ही उसके लिये भूषणयुक्त सम्यक चेष्टा को नहीं जावेगी अथवा मनुष्य की अधि भौतिक, अधिदैविक एवं अध्यात्मिक उन्नति के अनुकूल चेष्टायें ही उसकी भूषण भूत सम्यक चेष्टायें हैं। या मनुष्य की वैयक्तिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में लौकिक–परालौकिक अभ्युदय के अनुकूल देहेन्द्रिय मन–बुद्धि चिंताहकार की चेष्टा ही उसकी भूषणभूत सम्यक चेष्टा या संस्कृतिक है।[1] वृहत हिन्दी कोष में संस्कृतिक का अर्थ यदि सुधार, निर्माण के अर्थ में है तो प्रोफेसर आम्टे के शब्द कोष में "कल्टी वैज्ञानिक का अर्थ संवर्धन है।"[2]

संस्कृति का शब्दिक अर्थ संस्कार या अन्य पारिष्कृत भी है। ज्ञान अनुभव के संस्कार को ही एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को देता है। इस तरह संस्कृतिक के माध्यम से ही युग का विकास क्रमशः होता है। श्री महादेव शास्त्री दिवेकर के अनुसार – "संम्यक कृतियों और परम्परा से प्राप्त संस्कारों को समविष्ट संस्कृति है।[3]

ऋग्वैदिक सभ्यता एवं संस्कृति के निर्माता आये थे।[4] प्राचीनकाल से ही भारत में वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीत और नृत्य का महत्व मिला है । इतिहास के सभी काल खण्डों में इसका सतत् विकास होता रहा है। इसी क्रमबद्ध विकास का परिणाम है कि हमारे पास अक्षय कलानिधि का संचय है। वैसे प्राचीन भारत के लगभग सभी कलात्मक अवशेषों की प्रकृति धार्मिक है। अथवा उसकी रचना धार्मिक उद्देश्यों से की गई लगती है मगर उसकी विशिष्टता एवं गुणवत्ता सर्वथा अपने आप में अद्वितीय हैं। अपने सांस्कृतिक धरोहरों पर एक नजर डालते ही स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्येक कला अपने काल के पूर्ण एवं क्रियात्मक जीवन का साक्ष्य है।[5]

धर्म और संस्कृति

भारतीय समाज सुधारकों और महापुरूषों जैसे– गौतम बुद्ध, वर्धमान महावीर, शंकराचार्य, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानंद, ऋषि दयानंद आदि ने राजनैतिक सीमाओं की अपेक्षा न करके धार्मिक और सांस्कृतिक एकता के संपादन का प्रयास किया। राम और कृष्ण के आदर्श अर्जुन और भीम की वीर गाथाएँ, नानक और तुलसी के उपदेश समान रूप से सारे भारतीयों को प्रभावित करते हैं। भारतीय संस्कृति में जिन मूलभूत तत्वों का ऊपर वर्णन हुआ है। उनका दर्शन और अनुभव सारे भारत में होता है। [6]

दक्षिण कोसल प्रागैतिहासिक युग के कालांतरीय अद्यतनायुग तक अत्यधिक महत्वपूर्ण रहा है। यहां पर देश की प्राचीनतम संस्कृति के कुछ महत्वपूर्ण अवशेष विद्यमान हैं जो इतिहास की धरोहर हैं और हमारे गौरवशाली उपलब्धि है। [7]

छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विशिष्टताओं का भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। अरण्यांचल की ग्राम्य संस्कृति यहां के जीवन का अविभाज्य अंग थी। छत्तीसगढ़ में शांति एवं अहिंसा का प्रभाव प्राचीन काल से रहा है। यहां सभी धर्मों का, समाज का समान आदर रहा है और हिन्दू संस्कृति, बौद्ध संस्कृति, जैन संस्कृति, इस्लाम धर्म, ईसाई धर्म, सिक्ख धर्म, पारसी धर्म से यह धरा प्रभावित रही है। कबीर पंथियों का यह प्रदेश महत्वपूर्ण केन्द्र है। आदिवासी संस्कृति "समाजशास्त्री" के लिए गौरव है। भावात्मक एकता यहां की उपलब्धि है। लोग दीवाली, दशहरा, होली आदि बड़े हिन्दू त्यौहारों के साथ–साथ हरियाली, तीज, नागपंचमी और पोला का त्यौहार भी विशेष उत्साह के साथ अपने कृषि संबंधी औजारों की पूजा, बैल दौड़, क्रीडा–कौतुक आदि के द्वारा मनाते हैं।[8]

छत्तीसगढ़ की संस्कृति

छत्तीसगढ़ की संस्कृति धार्मिक और सामाजिक परम्पराओं से स्पष्ट होती है । उनके विचार–धाराओं और विश्वासों का यहां पर मिश्रित रूप दिखाई पड़ता है। यह विशाल प्रदेश आदिवासियों का मूल आवास है, शेष अन्य शताब्दियों से विभिन्न वर्गों वाली जातियों का बाहर से आगमन होता रहा है। आदिकाल तक

के छत्तीसगढ़ का इतिहास इसी सामाजिकता को संजोये हुए हैं ।

विभिन्न मत–मतांतरों एवं सम्प्रदाय के कारण छत्तीसगढ़ की एकता में अनेकता के दर्शन होते रहे हैं, प्राचीनकाल से ही तत्कालीन धर्म साधनाओं का इस अंचल में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष प्रभाव पड़ता रहा है।

अपने जीवन रक्षा के लिए ये प्रकृति की अनुकंपा के लिए अपार शक्तियों, देवी, देवताओं आदि में श्रद्धा रखते हैं । उनके जीवन में पूजा, पाठ प्रार्थना और अनेकों अंधविश्वास भरे हैं। भौगोलिक कारणों के आरण्यक जातियों का इस क्षेत्र में बाहुल्य रहा है। [9]

छत्तीसगढ़ की सांस्कृतिक विशिष्टताओं का भारतीय इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है । अरण्यांचल की ग्राम्य संस्कृति यहां के जीवन का अविभाज्य अंग थी। छत्तीसगढ़ में शांति एवं अहिंसा का प्रभाव प्राचीनकाल से रहा है। यहां सभी धर्मों का, समाज का समान आदर रहा है । और हिन्दू, बौद्ध, जैन, इस्लाम, ईसाई, सिक्ख, पारसी धर्म से यह धरा सदैव प्रभावित रही है। [10]

संस्कृति की दो प्रकार की व्याख्याएँ संभव हैं। व्यापक और सीमित। मानव विज्ञान सीखे हुए व्यवहार प्रकारों की समग्रता को संस्कृति की संज्ञा देता है। इसकी परिधि में मानव और प्रकृति, मानव और समाज, और मानव अदृश्य जगत की शक्तियों के सभी अन्तःसंबंध आते हैं। मानव का अर्न्तजगत् विचार, विवेक, व्यक्तिगत मूल्य, ऊर्जा की अभिव्यक्ति भी संस्कृति का अंग होता है। [11]

संस्कृति 'संस्कार' शब्द का वंशज है, जिसका तात्पर्य भी सुधारने या शुद्ध करने से है। अन्य जीवधारियों की भांति मनुष्य भी कुछ मूल प्रवृत्तियों को लेकर जन्म लेता है, किन्तु वह अपने बौद्धिक शक्ति के उपयोग से इन प्रवृत्तियों को प्राप्त करता है इनकी आवश्यकताओं की प्रत्यक्ष जीवन का एक ढांचा उठाना है। वह अनुभवों के आधार पर कुछ व्यवहारों को सीखता चलता है। इन्हीं सीखे हुए व्यवहारों तथा सामाजिक परम्परा के प्रति आम लोगों के सीखे हुए व्यवहारों को संस्कृति का नाम दिया गया है। [12]

सुरेन्द्रबिहारी गोस्वामी– ''चैतन्य'' लोक संस्कृति के स्वरूप निर्धारण में

लोक धर्म का सबसे अधिक योदान रहा है। लेकिन लोक धर्म से जुड़ी हुई लोक संस्कृति की महत्ता को सदैव ही विशिष्ट और बुद्धिजीवी वर्ग और विद्वान विशिष्ट धर्मो की खोजबीन में लगे रहे और इतिहासकारों में भी वैष्णव, शैव, शक्ति, बौद्ध, जैन आदि धर्मों को ही महत्व दिया। फलस्वरूप लोक–धर्मों के उद्‌भव, विकास और उत्थान–पतन पर ध्यान नहीं दिया गया।

धर्म संबंधी लोक मान्यताएँ जो किसी निश्चित काल सीमा में किसी अंचल या राष्ट्र के लोक के प्रचलित होती है, लोक धर्म कहलाती है । लोक की आस्था, विश्वास, मान्यताएँ एवं परम्पराओं पर ही लोक जीवित रहता है। और वह लोक की आत्मा तथा लोक संस्कृति का अंतरंग है।[13]

आज का यह उपेक्षित छत्तीसगढ़ किसी समय संस्कृति और सभ्यता का पुनीत केन्द्र था। स्पष्ट कहा जाय तो आदिकालीन मानव–सभ्यता इस वन्य भू–भाग में पनपी थी। अरण्य में विश्वास करने वाली 45 से अधिक जातियों को आज तक इस प्रदेश ने सुरक्षित रखा है। उनके सामाजिक आचार व व्यवहार में भरतीय संस्कृति के वे तत्व परिलक्षित होते हैं जिनका उल्लेख युग–सूत्रों में आया है। इनके संगीत विषयक उपकरण आभूषण व नृत्य परम्परा में आर्य–संस्कृति की आभा चमकती है। यहां सुसंस्कृत कला का विकास भले ही बाद में हुआ हो पर आदि मानव सभ्यता व लोक शिल्प एवं ग्रामीण रूचि के प्राकृतिक प्रतीक चिन्ह बहुत से मिलते हैं।[14] दूर अंचल में आज से लगभग 1800 वर्ष पूर्व वैदिक सभ्यता प्रचलित थी।[15]

कवि समाज और वाचनालय के द्वारा पंडित सुन्दरलाल शर्मा ने राजिम को संस्कृति और साहित्य के सन्दर्भ में जो पहचान दी वह अनुकरणीय है।[16] छत्तीसगढ़ी खण्ड काव्य में कवि ब्रजलाल शुक्ल की छत्तीसगढ़ी भाषा व साहित्य की मिठास बनाने, गौरव का भाव प्रदर्शित करने, छत्तीसगढ़ी पत्र के प्रति अपनत्व और आस्था से महिमा मंडित करने और जीवन की उन्मुखी विकास करने के लिए पं. शर्मा ने छत्तीसगढ़ी दान लीला की रचना की।[17]

आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का अध्ययन आपने 70 वर्ष पूर्व वीम्स और भन्डारकर के अनुसंधानों के परिणामस्वरूप प्रारंभ हुआ था। इस अध्ययन का

सूत्रपात संस्कृत तथा प्राकृत के अध्ययन से हुआ। छत्तीसगढ़ी का वैज्ञानिक अध्ययन सर्वप्रथम ग्रियर्सन ने ही प्रारंभ किया था। उन्होंने अपनी पुस्तक "लिंग्विस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया" भाग–छः में छत्तीसगढ़ी की चर्चा की है । भाषा की विशेषता तथा उसके विभिन्न विभेदों का सोदाहरण उल्लेख भी किया है।[18]

पं. सुन्दरलाल शर्मा, लेखक, कवि व नाटककार थे। छत्तीसगढ़ में राष्ट्रीय जागृति और स्वतंत्र आन्दोलन का सूत्रपात करने का श्रेय आपको ही है। सप्रेजी के समान आप भी बहुमुखी प्रतिभा के धनी त्यागशील और कर्मवीर पुरूष थे। [19] कौन जानता था कि छत्तीसगढ़ी 'दानलीला' का रसिक सुकुमार कवि हृदय में क्रांति की चिंगारी है और कौन सोच सकता है कि जिन्होंने "विक्टोरिया वियोग" की रचनायें की हैं। वहीं विक्टोरिया के उत्तराधिकारियों के प्रति अपने दिल में बगावत की आग लिये हुए बैठा है।[20] कवि समाज के संस्थापक दुबे जी एवं महामंत्री पं. शर्मा जी की कृति हिन्दी साहित्य सम्मेलनों, अधिवेशनों और काव्य–गोष्ठियों के माध्यम से सन् 1916 में बहुमुखी विकसित हो गई थी। [21]

पं. सुन्दरलाल शर्मा की कृतियों ने साहित्य समाज का दर्पण होता है । इस युक्ति को चरितार्थ कर दिया। छत्तीसगढ़ की जनता ने अपनी तत्कालीन स्थिति को समझकर एक भव्य दृष्टिकोण से अपने आप को राजनीतिक चेतना के विकास में सम्बद्ध कर दिया। वस्तुतः पं. सुन्दरलाल शर्मा छत्तीसगढ़ में सांस्कृतिक एवं राजनीतिक चेतना के संवाहक थे। [22]

प्राचीन छत्तीसगढ़ी साहित्य

छत्तीसगढ़ी भाषा अर्द्ध–मागधी की दुहिता एवं अवधी की सहोदरा है। छत्तीसगढ़ी और अवधी दोनों का जन्म अर्द्धमागधी के गर्भ से लगभग 1080 वर्ष पूर्व 9वीं या 10वीं शताब्दी में हुआ था इस एक सहस्त्र वर्ष के सुदीर्घ अंतराल में छत्तीसगढ़ी और अवधी पर अन्य भाषाओं के प्रभाव भी पड़े तथा उनका स्वरूप पर्याप्त परिवर्तित हो गया। छत्तीसगढ़ी भाषियों की संख्या अवधी की अपेक्षा कहीं अधिक है और इस दृष्टि से यह बोली के स्तर के ऊपर उठकर भाषा का स्वरूप प्राप्त कर ली है। [23]

छत्तीसगढ़ में प्राप्त होने वाले भित्तिचित्र एवं प्राचीन अभिलेखों से इस युग

के सांस्कृतिक विकास के द्योतक हैं। [24] बाल्मीकी आश्रम, श्रृंगिऋषि आश्रम एवं अंगिरस आश्रम छत्तीसगढ़ में था। [25]

छत्तीसगढ़ के नैसर्गिक वैभव की भांति इसका लोक साहित्य भी अत्यंत समृद्ध और हृदयग्राही है। लोगों की उदार मनोवृत्ति और उसके आदर्शों की छाप गीतों, कथाओं और वार्ताओं में विद्यमान हैं। छत्तीसगढ़ भारत का मध्यवर्ती दक्षिण–पूर्वी भाग है। छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य में सीमावर्ती प्रदेशों महाराष्ट्र, म.प्र., उड़ीसा, झारखण्ड, आन्ध्रप्रदेश एवं बिहार के प्रचलित कथाओं तथा गीतों आदि का प्रभाव अत्यधिक दृष्टिगोचर होता है। [26]

छत्तीसगढ़ की लोक भाषाएँ

छत्तीसगढ़ी का क्षेत्र छत्तीसगढ़ का इलाका है पुराने रीति–रिवाजों, संस्कारों में पला होने के कारण अभी तक छत्तीसगढ़ क्षेत्र पुराने ढकोसलों और परिपाटी में जी रहा है, जिसके कारण हमारी प्राचीन मान्यताएँ आज भी सुरक्षित रह सकी हैं। यहां के सभी पर्वों, त्यौहारों और अवसरों पर लोक–गीतों की भरमार रहती है। दीपावली के समय छत्तीसगढ़ के रावत फूले नहीं समाते। वे इस अवसर पर एक साथ नाचते हैं, जिसे "अहिरा नाच" कहते है। इसके साथ बांस गीत की धुन सुनते ही बनती है। छत्तीसगढ़ के जन–जीवन में करमा नृत्य का विशेष स्थान है। कहा जाता है कि कर्मा नामक एक राजा था, एक समय उस पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा और वह बेचैन हो उठा। आखिर मुसीबत से बचने के लिए उसने कर्मादेवी की शरण ली और नृत्य से देवी की पूजा की। इसमें विशेषकर आदिवासी नृत्य करते हैं। लेकिन अब इसका प्रचार गाँव–गाँव में हो गया है। जन्म से लेकर मृत्यु तक के गीत छत्तीसगढ़ी में हैं। किसान खेत जोतते हैं, तो गाते हैं, फसल काटते हैं, तो गाते हैं, वे हंसते हैं, तो गाते हैं, और रोते हैं, तो गाते हैं। ये गीत उनके जीवन में पूरी तरह से समाये हुए हैं। छत्तीसगढ़ी लोक भाषा बोलने वालों की संख्या एक करोड़ से भी अधिक है। [27]

गोंड़ी

यह लोक भाषा समूह की एक शाखा है जो अधिकांश छत्तीसगढ़ की पहाड़ी जनजातियों में बोली जाती है– दुर्ग, रायपुर, बस्तर, बिलासपुर, अम्बिकापुर, रायगढ़ जिले में मारिया (माड़िया), डंडामी, गोंड़ और रायगढ़ के कुडुख व हल्बी आदिवासियों का वास है। [28]

प्राचीन छत्तीसगढ़ी साहित्यकारों की अपेक्षा प्रशस्ति के कवियों की रचनाएँ प्रचुर संख्या में मिलती हैं। [29] पृथ्वी देव द्वितीय के राजिम शिलालेख क्र.सं.(896) [30] के महाकाव्य काल के रामायण एवं महाभारत का संकेत मिलता है। [31]

अन्य आधुनिक आर्य भाषाओं से लिए गए शब्दों के अतिरिक्त छत्तीसगढ़ी में अन्यर्थ भाषाओं के शब्दों का भी बाहुल्य है। [32]

छत्तीसगढ़ी लोक गीतों की सामाजिक पृष्ठभूमि

छत्तीसगढ़ की जनता अशिक्षित और असभ्य है। इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा पर इसमें कोई संदेह नहीं कि वे संस्कृति सम्पन्न हैं। कुछ लोग सभ्यता और संस्कृति को एक समझते हैं। सभ्यता को लोग सीखते हैं, जबकि संस्कृति हमें विरासत में मिलती है। यही कारण है कि यहां के लोगों के अशिक्षित होने पर भी उनके साधारणतया सारल्य, औदार्य, निष्ठा, कृतज्ञता, सहिष्णुता आदि गुणों का समावेश पाया जाता है।

अपने जीवन के लिए ये बहुधा प्रकृति पर निर्भर रहते हैं और प्रकृति की अनुकंपा के लिए अपार शक्तियों, देवी–देवताओं आदि में श्रद्धा रखते हैं। इनके जीवन में पूजा–पाठ, प्रार्थना और अनेकों अंधविश्वास भरे हुए हैं। जादू–टोने आदि पर भी इनका विश्वास है। शुभ कार्यों तथा आपत्ति के अवसरों पर ये देवताओं के सम्मुख भेड़ और बकरी की बलि चढ़ाकर उन्हें प्रसन्न करते हैं। [33]

नारी गीत

छत्तीसगढ़ की सामान्य नारियॉ पिछले कुछ वर्षों से उपेक्षित, तिरष्कृत तथा हीन भावना से ग्रस्त रही हैं। [34] नारी की घरेलू त्रास, कलह, अशांति और हीनता को भुलाने के लिए भेजली, नौरा तथा जंवारा आदि नारी व्रत तथा पर्वो से संबंधित गीत की ओर(भगवान की ओर) अभिमुख हो गयी हैं। [35]

छत्तीागढ़ी लोक गीत सामयिक व्यवस्था की उपज हैं घर और बाहर सर्वत्र स्त्री–पुरूष मिलकर जीवन–यापन करते हैं। परिश्रम के क्षण हो या चाहे नृत्य या सामूहिक मनोरंजन के क्षण स्त्री की आवाज पुरूष को छूकर चलती है। वन–उपज की शीतल वायु और खेती की हरियाली तथा महक इन लोकगीतों से अठखेलियां करती हैं। [36]

पुरूष गीत

पुरूष लोक गीतों या दोर श्रृंगारिक गीतों का प्राधान्य है। ये आनंद का कारण और मनोरंजन के साधन भी हैं। पंथी, कुडा, पंडवानी, जंवारा तथा भजन लोक गीतों में हम धार्मिक भावना का परिचय करते हैं। बांस, करमा, ददरिया, नाचा तथा भड़ी गीतों में जीवन के संघर्षों, संयोग–वियोग, सुख–दुख, आशा–निराशा तथा जय–पराक्रम की भावना पाते हैं। [37]

लोक गीत क्षेत्रीय लोक मानस के अन्तर्गत के भाव विचार और कल्पनाओं का लिखित स्वर स्वरूप होता है। छत्तीसगढ़ी लोकगीतों की मधुरता संपूर्ण भारत में प्रसिद्ध है। खेतों–खलिहानों में, मेले में, बरसात में, गर्मी में प्रायः हर समय स्थान और मौसम में उन गीतों की स्वर लहरियां, छत्तीसढ़ में कोने–कोने में सुनी जा सकती है। भाषा और कल्पना का अनूठा समागम यहां के लोकगीतों में दिखाई पड़ता है। यद्यपि आज के लोक–गीत प्रायः अपने मूल स्वरूपों से दूर हो चले हैं। [38]

सुवा गीत

सुवा गीत एक नृत्य गीत है। जो सुवा या तोता नामक पक्षी से संबंधित करने गाया जाता है। वस्तुतः स्त्रियों के ग्राम–गीत हैं, प्रथा यह है कि एक टोकरी में मिट्टी का एक तोता बनाकर रखा जाता है, नृत्य करते समय स्त्रियां इस टोकरी को बीच में रख लेती हैं और दो दलों में विभक्त होकर ताली पीटती हुई निठुरे गाती हुई गोलाकार घूमती हैं। [39]

ददरिया

खेतों में काम करते हुए पुरूष एवं महिलाएँ सवाल–जवाब तलब के लिए प्रणय रूपों के अंतर्गत ददरिया गाती हैं। ये गीत विरह की घड़ियों का सजीव चित्र प्रस्तुत करते हैं। [40]

करमा गीत

करमागीत एक प्रकार का नृत्य गीत है। यह गीत अनुष्ठानिक गीत है।

करम की डाल डालकर, सरमाहा ने मांदर बजाकर, नाच–गान किया तथा पूजा–अर्चना की। करमसेन भगवान का वरदान भी करमाहा को प्राप्त हुआ। तब छत्तीसगढ़ की धरती में करम सैनिक का उत्सव मनाया जाता है।[41]

पण्डवानी

इस छत्तीसगढ़ अचंल में प्रचलित पंडवानी गीत में महाभारत की कथा गायी जाती है। इस गीत के दो भाग हैं। वेदमती पंडवानी गीत और दूसरा कापालिक पंडवानी गीत के माध्यम से गाया जाता है।[42]

बांस गीत

छत्तीसगढ़ प्रदेश में बहुत से लोक–गीत जाति विशेष के लोगों के द्वारा गाया जाता है। उनमें बांस गीत रावत जाति के लोगों के लिए सुरक्षित है। ये गीत बांस के टुकड़े का पोंगा बनाते हुए मुक्तक और प्रबंध दोनों प्रकार की अनुभूति प्रधानतः रहती है। एक बांस गीत में गायक सुन्दर रमणी के बन्धना होने का कारण पूछता है। [43]

छत्तीसगढ़ के लोक नृत्य

देश के अन्य लोक नृत्यों के सदृश्य छत्तीसगढ़ी लोक–नृत्य कला भी अति प्राचीन है। नृत्यों का विकास लोक–जीवन से ही होता है। नृत्य ही लोक–जीवन को भाव–विभोर कर देता है। दर्शक मण्डली का हृदय आनंद में लय होकर झूम उठता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि लोक–नृत्यों में ही लोक–जीवन में हृदय को सुरक्षित रखा है।

लोक–नृत्य हृदय के भावों को व्यक्त करते हैं, इनमें वासना तथा साधना का विचित्र समन्वय मिलता है। इसमें लोक–जीवन की निष्काम प्रवृत्तियों का परिचय मिलता है, लोक–नृत्य में जीवन की आत्मानुभूति है और उसकी पहुंच मनुष्य की आत्मा तक है।

आमोद–प्रमोद तथा मंगल अवसरों या पर्वों पर कराए जाने वाले नृत्य भिन्न हैं। देवार नृत्य, किसबिन नृत्य,गम्मत, बसुदेव, कोटर नृत्य प्रमुख हैं। इन नृत्यों में सारंगी, चिकारा, मांदर, बेला, डफला, डमरू, मोहरी, निसान, ढोलकी आदि वाद्य यंत्रों का प्रयोग किया जाता है। [44]

छत्तीसगढ़ी नृत्य और संगीत की चर्चा करते हुए सहज ही मंजीरा,डपला, ढोलकी, झांझ, डंडा, बांस, बांसुरी और घुघरू आदि के चित्र उभरते हैं । संगीत

और नृत्य की गोष्ठी और समागम गाँव–गाँव, बार–चौमास चलता रहता है।

छत्तीसगढ़ के अन्य नृत्यों में डंडा, करमा, मड़ई, फड़ी, नाचा और रास प्रधान है। प्रायः प्रत्येक सामूहिक नृत्य की पुरूषों के सम्मिलित नृत्य हैं। सांगीतिक उपलब्धियों का उद्धरण प्रस्तुत करते समय हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि संगीत का अर्थ केवल गायन ही नहीं वरन् वादन एवं नृत्य भी हैं। अतैव सांगीतिक उपलब्धियों के विवेचन में इन तीनों का समावेश स्वाभाविक होगी। [45]

शैला और रीना छत्तीसगढ़ के वनवासियों के दूसरे प्रधान नृत्य, गीत हैं। शैला पुरूषों का और रीना स्त्रियों का नृत्यगीत है दशहरा नृत्य शैला नृत्य ही है। दीपावली में इन दोनों प्रकार के नृत्य होते हैं, उनका, परना नृत्य पंजाब के भांगड़ा नृत्य से बहुत कुछ मिलता है। [46]

नाचा गम्मत की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नाचा का तात्पर्य नृत्य। नृत्य और मुद्राओं का लयात्मक संसार है। यह संसार आदमी की जिजीविषा और अभिव्यक्ति का संसार है। भारतीय संगीत में नृत्य को दो प्रमुख भागों में बांटा गया है – 1. उत्तर भारतीय नृत्य शैली 2. दक्षिण भारतीय नृत्य शैली। विविध प्रकारों में भरतनाट्यम, कुचीपुड़ी, कत्थककली, मणिपुरी एवं ओड़िसी प्रमुख हैं। छत्तीसगढ़ की लोक संस्कृति में नाचा या गम्मत के रूप में जाना जाता है।[47]

छत्तीसगढ़ी नाचा या गम्मत का विकास हुआ है, और गम्मत से इन नाचा पात्र के आधार पर ही छत्तीसगढ़ी गम्मत के विकसित नाट्य स्वरूपों का नामकरण नाचा के रूप में पड़ा।[48]

लोक नृत्य हृदय के भावों को व्यक्त करते हैं इनमें वासना तथा साधना का विचित्र समन्वय मिलती है लोक–नृत्य का वासना को साधना में परिवर्तित करना उसकी जीवन गति और निश्छल हृदय का द्योतक है लोक–नृत्य जीवन के आनंद को सुरक्षित रखने का एक मात्र साधन है। [49]

सुवा नृत्य :

यह केवल स्त्रियों का नृत्य है जो दीपावली के अवसर पर किया जाता

है। एक टोकनी में शंकर–पार्वती के प्रतीक सुवा और जलता हुआ दीप रखकर ग्रामीण स्त्रियाँ सुवागीत गाते हुए हाथों में तालियां बजाकर झुककर दांये–बांयें झूमती हुई उस टोकनी के चारों ओर वर्तुलाकार नाचती हैं। ये गीत विशेषताया करूणरस युक्त होते हैं। [50] ऐसे सुहावने समय में नारी हृदय के सहज उद्‌गार गीत के रूप में फूट पड़ते हैं। उन गीतों में स्त्री जाति की आत्मा बोलती है फिर जब फसल पकने को होती है तग फूल–पत्तों से अपना श्रृंगार कर धान की नूतन मंजरी जूड़ों के तथा कर्णिकार के फूल कानों में खोंचकर युवतियाँ गाँव में नाचने निकलती हैं, तब उन्हें देखकर कालिदास की जनपद–वधु का सहसा स्मरण हो जाता है, वे अपने साथ मिट्‌टी का एक सुवा रखती हैं, सुवा छत्तीसगढ़ की गरबा है। [51]

करमा नृत्य :

डंडा के सदृश करमा दूसरा प्रमुख लोक–नृत्य है। डंडा और करमा–नृत्य एक दूसरे के अत्यंत सन्निकट हैं। भेद नृत्य की प्रणाली एवं उपकरणों मात्र का है। करमा शरत् की धवल चन्द्रिका में पूर्णतः, प्रकृति के रंग में रंग जाने का अनुपम प्रदर्शन है।

करमा प्रायः सभी जातियों द्वारा गाया जाता है। करमा लोक–नृत्य सुख–समृद्धि एवं भाई की कल्याण की कामना से भादो मास के शुक्लपक्ष एकादशी को उपवास रखकर करमा के ही वृक्षों की शाखा का पूजन करते हुए किया जाता है। [52]

इस नृत्य में भाग लेने वाले स्त्री–पुरूष तन, मन की सुधि भूलकर अपनी आशा और उमंगों को ऐसे उड़ेल देते हैं कि दर्शकगण उनकी मादकता में चूर हो जाते हैं। ढोलिये इस अंदाज और ताल में ढोल बजाते हैं कि उसके स्वर में मन मुग्धकारी पुलक का जादू होता है। लोक–गीतों का कवि वास्तव में कवि नहीं किन्तु गायक होता है।

दशहरा नृत्य शैला नृत्य ही है। दीपावली में इन दोनों प्रकार के नृत्य होते है। उनका करमा नृत्य, पंजाब के भांगड़ा नृत्य से बहुत कुछ मिलता है। [53]

अहिर नाचा या रावत नाचा

छत्तीसगढ़ की रावत जाति अपने को श्रीकृष्ण का वंशज मानती है, क्योंकि गायें चराना इनकी प्रमुख वृत्ति है। ये हर वर्ष के कार्तिक मास में 'मातर' जगाते हैं। पर यदि कोई बदना मानता है तो फाल्गुन मास तक अर्थात् दीपावली से होली के बीच कभी भी ये नृत्य कर सकते हैं। सामान्य तथा गोवर्धन–पूजा के दिन इनका नृत्य प्रारंभ होता है और कार्तिक पूर्णिमा तक चलता है। [54]

वे पैरों में एक विशेष ढंग के पेजन, कमर में बड़े घुंघरू, कंधों पर पगड़ी पर मोरपंख के गुच्छे या गेंदाफूल के हार, बदन पर कौड़ी, मंडित कवच, नवीन रंगीन युक्त कच्छ और हाथ में डंडे ढाल आदि से सुसज्जित रहते हैं। इन नृत्यों की लय और नर्तकों की छवि निराली होती है। [55]

डंडा नृत्य :

यह नृत्य केवल पुरूषों द्वारा दोनों हाथों में एक दूसरे के डंडे पर ताल युक्त प्रहार करते हुए समूह में गोलाकार घूमकर कई आकृतियों में नाचते हैं। यह नृत्य दशहरा और होली के अवसर पर प्रातः किया जाता है। [56]

यह मंडली मौसम में गांव–गांव घूमती है। साधारणतया कार्तिक शुक्ल एकादशी से लेकर फाल्गून पूर्णिमा तक डंडा नाच का समय है। गांव में नाच होने के बाद पूरी मंडली को अपने घर लाकर खिलाता–पिलाता है। [57]

रहसः समृद्ध सांस्कृतिक परम्परा की तस्वीर

'रहस' का तात्पर्य है रास या रासलीला। रहस, रास का छत्तीसगढ़ी शब्द है। इसका तात्पर्य है संगीत नृत्य प्रधान कृष्ण का विविध लीलाभिनय रहस छत्तीसगढ़ी की अनुष्ठानिक नाट्यविधा है। जो यहां के समृद्ध लोक रंग का संपूर्ण उदाहरण पेश करती है।

श्रीमद्भगवतगीता में रास, रहसि और रहस्य के बीच कहीं छत्तीसगढ़ी शब्द रहस का उद्‌गम है। 'रहस' की अपनी एक अनूठी नाट्यशैली है। [58]

छत्तीसगढ़ के अन्य नृत्यों में डंडा, करमा, मड़ई, फड़ी नाचा और रास

प्रधान हैं। प्रायः प्रत्येक सामूहिक नृत्य हैं। मड़ई, डंडा प्रायः पुरूषों का ही नृत्य है। देवार नाचा स्त्री–पुरूषों के सम्मिलित नृत्य हैं। [57]

वैष्णव भक्ति आन्दोलन से प्रेरित छत्तीसगढ़ी रहस नाट्य में ग्राम में मिट्टी की मूर्तियां स्थापित किया जाना यह उसकी अपनी विशिष्टता है। रहस का मंचन संचालन करने वाला रहस पंडित कहलाता है और रहस का आयोजन करने वाला व्यक्ति यजमान। महाभारत के आरंभ में अर्जुन को गीता का उपदेश देते हुए रथ पर सारथी रूप में सवार कृष्ण की भी प्रतिमा बनाई जाती है। इनके अलावा रास लीला में प्रसंगों पर आधारित प्रतिमाएँ जैसे ूतना वध, बकासुर वध, महारास आदि की प्रतिमाएँ भी बनाई जाती हैं। [60]

छत्तीसगढ़ में मृण्य मूर्तिकला की एक अत्यंत समृद्ध एवं जीवंत परम्परा विद्यमान है। बस्तर का धातु शिल्प, कांस्य या मिश्र धातु शिल्प अपनी श्रेष्ठ कला–कृतियों के लिए संपूर्ण विश्व में विख्यात है। जगदलपुर और उसके आसपास सैकड़ों युवक बस्तर के जन–जीवन को काष्ठ में उकेर कर सज्जा सामग्री के अलावा घरेलू उपयोग का सामान बनाने लगे हैं। राज्य में भतरा, माओपाटा, पंडवानी, नाचा और रहस जैसे मंचीय कलारूप अब भी खूब लोकप्रिय हैं।

छत्तीसगढ़ अपनी लोक परंपराओं के मामले में अत्यंत समृद्ध है। यहां की लोक संस्कृति उस क्षेत्र के भारत के केन्द्र स्थल में स्थित होने के फलस्वरूप यह संपूर्ण देश के प्रभावों को आत्मसात करती रही, वहीं दूसरी ओर यहां के भीतरी आदिवासी अंचल लम्बे समय तक बाहरी दुनिया के लिए लगभग बंद जैसे रहे। इके कारण आदिवासी कला स्वरूप बाह्य प्रभावों से बचे रहे। इस तथ्य का प्रमाण यहां के आदिवासियों के लोक–नृत्य एवं लोक–गीत हैं।

पोरा (पोला) त्यौहार जो कृषक संस्कृति का प्रमुख त्यौहार है के अवसर पर मिट्टी के नंदी बेदरी, हाथी, घोड़े, बच्चों के खेलने के खिलौने लाखों की संख्या में बनते हैं बिकते हैं। मिट्टी के खिलौनों में रसोई से संबंधित खिलौने और अन्न पीसने का जांता (चक्की) बच्चों के प्रिय खिलौने हैं। ये खिलौने भी कृषक संस्कृति के ही प्रतीक हैं। आदिवासी क्षेत्रों में गुड़ियों के देवी–देवताओं का मन्नत मानकर मिट्टी के हाथी, घोड़े एवं नंदी चढ़ाए जाते हैं।

छत्तीसगढ़ी साहित्य में 1634 के आस–पास खड़ी बोली की रचना का श्रेय रतनपुर के कवि गोपालचन्द्र मिश्र को जाता है। जिनकी रचना "खूब तमाशा", "जैमिनी अश्वमेघ" आदि बहुचर्चित हुई। इसी दौरान रेवाराम बापू की "विक्रम विलास, उमराव बख्शी की "अलंकार माला", माखन चन्द्र मिश्र की "छंद विलास" और रघुवर दयाल की "छंद रत्नमाला" रचनाएँ भी सामने आयी, गोपालचन्द्र मिश्र, खेमकरण, भानुकवि, बिसाहूराम, सैयदमीर अली पीर और विनायक राव तिवारी भी सम्मानित रचनाकार थे। इनके अलावा बनमाली प्रसाद श्रीवास्तव, मधुकर, पुन्नीलाल शुक्ल, बिसाहुराम, दशरथ लाल, विश्वनाथ दुबे, राजा चक्रधर सिंह, प्यारेलाल गुप्त, बल्देव प्रसाद मिश्र, सुखलाल पाण्डे, सरयू प्रसाद त्रिपाठी आदि भी इस दौर के चर्चित रचनाकार हुए।

ठाकुर जगमोहनसिंह, शिवनारायण, माधवराव सप्रे, मुकुटधर पांडेय, पं. लोचन प्रसाद पाण्डेय, पदुमलाल–पुन्नालाल बख्शी, आशिक अली खां, कुंज बिहारी दुबे, कुलदीप सहाय, केदारनाथ झा, केशव प्रसाद वर्मा, जयनारायण पांडेय, मावली प्रसाद श्रीवास्तव, वेणुधर पांडेय, हलालू राम सोरी आदि इस क्षेत्र में पहचाने लाने वाले नाम रहे हैं। पं. रामदयाल तिवारी व पं.विनय मोहन शर्मा की पहचान समालोचक के बतौर थी।

आजादी के बाद छत्तीसगढ़ में एक ओर गजानंन माधव मुक्तिबोध ने कविता में और दूसरी ओर विनोद कुमार शुक्ल ने उपन्यास की दुनिया में अपना एक अलग मुहावरा गढ़ा ।

इस प्रकार छत्तीसगढ़ की संस्कृति विविधता पूर्ण है व सतरंगी आभा से परिपूर्ण है।

* * *

संदर्भ–सूची

1. लेख श्री जगदगुरू शंकराचार्य :कल्याण हिन्दी संस्कृति ग्रंथ पृ. 23
2. : वृहद् हिन्दी कोष पृ. 1390
3. दिवेकर, महादेव शास्त्री : आर्य संस्कृति का उत्कर्ष पृ. 5
4. डॉ. राधेशरण : भारत की सामाजिक एवं आर्थिक संरचना और संस्कृति के मूल तत्व सन् 1990 पृ. 74
5. चन्द्र, पी. : आधुनिक भारतीय इतिहास एवं संस्कृति एम.एन.एम. प्रकाशन, नई दिल्ली 1994 पृ. 74
6. कृष्ण कुमार : प्राचीन भारतीय संस्कृति एवं इतिहास, 1993 पृ. 54
7. झा, लक्ष्मीधर : "दक्षिण कोशल के अभिलेखों का सांस्कृतिक अनुशीलन" 1985पृ. 18
8. मिश्र, रमेन्द्रनाथ व शुक्ला,शांता:"छत्तीसगढ़ का इतिहास" 1990 पृ. 5
9. मिश्र,रमेन्द्रनाथ व शुक्ला,शांता :छत्तीसगढ़ का राजनैतिक इतिहास एवं राष्ट्रीय आन्दोलन, 1990 पृ. 116
10. पूर्वोक्त : 1990 पृ. 5
11. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़(प्रस्तावना ओंकार प्रसाद भटनागर) 1973 पृ. 8
12. पाण्डेय, रामशुक्ल : भारतीय शिक्षा के विविध आयाग 1990 पृ. 2
13. व्यंप्रभा : रजत जयंती विशेषांक 1979 पृ. 76–77
14. : खण्डहरों का वैभव 1960 पृ.283–285
15. पाण्डेय, लोचनप्रसाद : प्यारेलाल गुप्त 1923 पृ.127
16. मिश्र, भुवनलाल : सुंदरलाल शर्मा शताब्दी जयंती समारोह 1981 पृ. 8

17. शुक्ल, बृजलाल : सुकुवा छत्तीसगढ़ी खण्ड काव्य 1983 पृ. 15

18. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969 पृ.51

19. पाण्डेय, शत्रुघन : हिन्दी गद्य साहित्य को छत्तीसगढ़ अंचल की देन 1984, पृ.140

20. शर्मा, पं. सुन्दरलाल : शताब्दी समारोह, 1984, पृ. 7

21. पाण्डेय, श्रीमती प्रभा : छत्तीसगढ़ में राजनैतिक जागरण के प्रणेता, पं. सुंदरलाल शर्मा, परिशिष्ट 1990.

22. मिश्र, रमेन्द्र नाथ : छत्तीसगढ़ में राजनैतिक एवं सांस्कृतिक चेतनाएँ संवाहक लेख पृ. 5

23. तिवारी, भोला नाथ : हिन्दी भाषा (प्यारेलाल–प्राचीन छ.ग.)1973, पृ. 321

24. आल्टेकर, प्रो.अनंत सदाशिव: प्राचीन भारतीय शासन पद्धति 1948, पृ. 26

25. :रायपुर जिला गजेटियर 1973, पृ.·39

26. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969,पृ.125

27. आदर्श, बृजभूषण सिंह : छत्तीसगढ़ के साहित्यकार 1979, पृ.40

28. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ 1973, पृ. 40–41

29. वर्मा, ठाकुर भगवान सिंह : छत्तीसगढ़ का इतिहास 1974, पृ. 6

30. बौद्ध दर्शन पृ. 12–47

31. अर्हत दर्शन पृ.47–83, 172 शुक्रनीति 14/293

32. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969 पृ. 34

33 शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969 पृ. 109

34. शुक्ल, हीरा लाल : मध्यप्रदेश का इतिहास 1996, पृ. 104

35. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969 पृ. 11

36. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969 पृ. 121

37. पाण्डेय, मुकुटधर : छत्तीसगढ़ का लोक–जीवन, महाकोशल दीपावली विशेषांक, 1960 पृ. 110

38.चैतन्य,सुरेन्द्र विहारी गोस्वामी: छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति व्यंप्रभा 1963–1988 पृ. 81–82

39. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ का इतिहास 1973, पृ. 381

40. गोस्वामी, चैतन्य सुरेन्द्र : व्यंप्रभा 1988, पृ. 82

41. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ का इतिहास 1973. पृ. 379

42. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ का इतिहास 1973. पृ. 392

43. साहू, पुरूर्षोत्तम : सामाजिक,आर्थिक एवं सांस्कृतिक केन्द्रबिन्दु, राजिम का ऐतिहासिक अनुशीलन(शोध–प्रबंध) 1999, पृ. 172

44. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ी लोक साहित्य का अध्ययन 1969, पृ. 117

45. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ का इतिहास 1973. पृ. 420

46. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ का इतिहास 1973. पृ. 421

47. गोस्वामी, चैतन्य सुरेन्द्र बिहारी:छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति, व्यंप्रभा 1988 पृ. 78

48. गोस्वामी, चैतन्य सुरेन्द्र बिहारी:छत्तीसगढ़ी लोक संस्कृति, व्यंप्रभा 1988 पृ. 78

49. शुक्ल, दयाशंकर : छत्तीसगढ़ लोक साहित्य का अध्ययन 1969 पृ.118

50. गुप्त, प्यारेलाल : प्राचीन छत्तीसगढ़ 1973, पृ. 422

51. पाण्डेय, मुकुटधर : छत्तीसगढ़ का लोकजीवन, महाकोशल दीपावली विशेषांक 1960, पृ. 108

* * *